# आवश्यकों की महिमा

*तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा.*

षडावश्यकों में एक-एक आवश्यक महिमाशाली है। ये आवश्यक आत्मा को समभावी, गुणियों के प्रति श्रद्धालु, अहंकाररहित, दोषरहित, आसक्ति रहित एवं गुणसम्पन्न बनाने में समर्थ हैं। आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के आज्ञानुवर्ती सन्त तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. ने सन् २००२ के मुम्बई चातुर्मास में अक्टूबर माह में प्रतिक्रमण विषयक जो प्रवचन फरमाया था वह इस दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। मुनिश्री के प्रवचन में उनके स्वरचित भजन के अन्तरे भी गुम्फित हैं, जो अर्थगाम्भीर्य से युक्त हैं। *-सम्पादक*

प्रतिक्रमण यद्यपि आवश्यक सूत्र का चतुर्थ आवश्यक है, तथापि प्रधान व प्रमुख होने से व्यवहार में, बोलचाल में 'प्रतिक्रमण' शब्द का इतना प्रयोग होता है कि शायद ही कोई बोलता हो कि मैं आवश्यक करने जा रहा हूँ। शायद ही संत भगवन्त या उद्घोषक प्रवचन सभा में कहते हों कि आवश्यक में पधारना, आज पक्खी है, चौमासी है या संवत्सरी है- आज तो हमें आवश्यक करना ही है- सभी जगह प्रायः 'प्रतिक्रमण' शब्द ही प्रयोग में आता है। अतः हम अभी आवश्यक सूत्र के छः आवश्यकों को देखने का प्रयास करते हुए भी प्रतिक्रमण की ही प्रधानता रख रहे हैं।

'दूसरों पर आक्रमण करना अतिक्रमण है और स्वयं पर आक्रमण करना प्रतिक्रमण है।' नगरपालिका अतिक्रमण हटाओ अभियान चलाती है। आजकल माफिया के सहकार से होने वाले अतिक्रमण के किस्से आपसे अपरिचित नहीं हैं। किन्तु स्वयं का जीव अनादिकाल से अतिक्रमण कर रहा है- इससे कितने परिचित हैं? अतिक्रमण के पाँच प्रमुख कारण हैं- मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग। हम इन्हें १, २, ३, ४, ५ की संख्या देकर लिखें तो १२३४५ बनता है। सबसे ज्यादा ताकत एक की अर्थात् मिथ्यात्व की है- उसके हटते ही मात्र २३४५ रह जाते हैं और अव्रत के छूटने पर ३४५- आत्म साधना का प्रतिक्रमण व्रती के लिये ही है पर स्वाध्याय के रूप में अव्रती को भी लाभकारी है। अपना प्रसंग चल रहा है- सर्वाधिक अतिक्रमण मिथ्यात्व से होता है। जब शरीर को ही अपना माना जाता है, धन सम्पत्ति को ही अपना माना जाता है तो किसी भी प्रकार से शरीर के सुख के लिये, धन-सम्पदा जुटाने के लिए जीवों का स्वाहा करते, खुले आम कत्लेआम करते, अणुबम के द्वारा नागरिकों को धराशायी करते कोई हिचक नहीं होती। बाप को जेल में डालते, बेटे को कत्ल कराते, बहू को स्टोव में जलाते व्यक्ति को हिचक नहीं होती। इस अतिक्रमण को समाप्त करने के लिये प्रतिक्रमण है। दूसरे को जो भी दिया जाता है, प्राकृतिक कर्म-विज्ञान के अनुसार वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने प्रति हो जाता है; कई गुणा होकर भोगना पड़ता है। निज विवेक के प्रकाश में जब जीव इस रहस्य को हृदयंगम करता है तब वह काँप उठता है, सिहर जाता है, प्रतिक्रमण करता है- अपने पर आक्रमण करता है, अपने दोषों से पीड़ित होता है और दोष-समाप्ति के लिये व्याकुल हो जाता है। दोष से, पाप से, व्याकुल बने जीव की उसमें रति समाप्त हो जाती है, वह विरत होता है। उसको आत्मरस की अनुभूति होती है, अब उसमें भीतर के रसवर्द्धन की भावना जागती है और वह उल्लासपूर्वक मर्यादा की पाल बाँधकर अपनी दृढ़ता बढ़ाता है। व्रत मनोबल (Will Power) बढ़ाने का सुन्दर साधन है। व्रती जीव संवर-निर्जरा करता है, कदाचित् अनाभोग, प्रमाद, अपरिहार्यता से स्खलना हो जाती है तो उसकी शुद्धि के लिये आवश्यक करता है, प्रतिक्रमण करता है। प्रथम आवश्यक 'सामायिक' है-

१. पाया है मानव का तन, यतना में करना यतन, लक्ष्य को पहचान।
पालना प्रभु के वचन, यति धर्म लवलीन मन, लक्ष्य मोक्ष महान्।।
पाप का परिहार कर, मौनव्रत स्वीकार कर।
वासना पर वार कर, योग दुष्ट निवार कर।।
दृष्टि निज नासाग्र हो, शान्त चित्त एकाग्र हो....लक्ष्य को पहचान।।

सामायिक अर्थात् सावद्य योग का त्याग, पापकारी योगों को छोड़ना। परन्तु प्रतिक्रमण में प्रथम आवश्यक में कायोत्सर्ग करना होता है, शान्त होना होता है। विशिष्ट साधक नासाग्र दृष्टि रख सकते हैं- अन्यथा आँखें मूँदकर अपने दोष देखने होते हैं, कृत अतिचारों का आलोचन- 'आ-मर्यादया समन्तात् लोचनम्' चारों ओर से, मर्यादापूर्वक देखना हम कितना कर पाते हैं? विचार करना है। प्रायः केवल पाठ और अधिक से अधिक शुद्ध पाठ तक ही सीमित रह जाते हैं। चिन्तन करें- क्या कहता है अनुयोगद्वार सूत्र? भाव-आवश्यक कब? बदलना आत्म-साधना है, प्रतिक्रमण का पाठ उच्चारण मात्र नहीं। अतिक्रमण की खोज करना है तभी प्रतिक्रमण संभव हो सकेगा-

प्रथम आवश्यक में ध्यान के समय प्रत्येक पाठ में 'तस्स आलोउं' में अपने दोष या अतिचार देखने का ही उल्लेख है। श्रावक की भूमिका में सोचना है क्या आज 'रोषवश गाढ़ा बंधन बाँधा' इसकी अपने द्वारा खोज हुई? भीतर में स्खलना, दोष, अतिक्रमण में व्यथा पैदा हुई? वासना पर वार हुआ? दुष्ट योग का वर्तमान में निवारण हुआ? एक-एक करके श्रमण के १२५ तथा श्रावक के ९९ अतिचारों का अन्वेषण हुआ? शायद आप कहेंगे तब तो बहुत अधिक समय लग जायेगा। इसीलिये पूज्य गुरुदेव फरमाते थे- प्रतिक्रमण के पूर्व १०-१५ मिनिट आँख मूँदकर खोज कर लें- अपने दिन को, पक्ष को, यावत् वर्ष को देख लें, एक-एक स्खलना ध्यान में आने पर प्रथम आवश्यक में उसकी भलीभाँति निवृत्ति की प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

अतीतकाल काल के दोष वर्तमान की निर्दोषता होने पर ही नजर आ सकते हैं। इसीलिये सामायिक (वर्तमान की) में निर्दोषता के क्षण में दोषों का अन्वेषण करना है।

२. ममता से मुख मोड़ के, सकल आस्रव छोड़ के।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म बंधन तोड़ के, समता नाता जोड़ के।।
वर्णना है ज्येष्ठ की, कीर्तना प्रभु श्रेष्ठ की...लक्ष्य को पहचान

दोष दिखे, पर संसार है, कहाँ संभव है दोष निकालना। जब तक जीना, तब तक सीना। यह तो ऐसे ही चलेगा। विकल्प के अभाव में दोषमुक्ति-हित सार्थक पुरुषार्थ संभव नहीं है। इसीलिये उत्तराध्ययन के २९वें अध्ययन में कहा- चतुर्विंशतिस्तव से दर्शन-विशुद्धि होती है, आस्था जमती है, विश्वास जगता है। अरे! इन्होंने भी अतीतकाल में हम जैसा ही भवभ्रमण किया था, ये भी इन सभी गलतियों को कर चुके हैं, फिर कैसे छुटकारा पाया? हाँ, इन्होंने ममता से मुख मोड़ा, आस्रव से नाता तोड़ा, फिर समता रस में निमग्न बने, विहूयरयमला बने। भाव विभोर हो जाता है- भक्तिरस से आप्लावित बन जाता है। 'लोगस्स सूत्र' पद्यमय स्तुति है, अधिकतर गद्य में बोल जाते हैं। दोषमुक्त को देखकर आत्म- उल्लास-आत्म-उत्साह जगा, प्रतिक्रमण का दूसरा आवश्यक पूर्ण हुआ।

३. चुंगी तन की चुकावना, बीते दिन शुभ भावना।
विषय विष की निवारना, संयमी मन पावना।।
दुःख भरा संसार है, क्षमाश्रमण आधार है...लक्ष्य को पहचान।।

पर वह तो चौथे आरे की बात है, महाविदेह क्षेत्र की बात है। भरत क्षेत्र में वर्तमान में ऐसा पुरुषार्थ कहाँ संभव है, आरा कितना खराब है, दुःखम ही तो इसका नाम है। जब चारों ओर एक ही बात है-

तस्कर चोर जबाड़ जुँआरी, बन गया इज्जतदार,
लाठी जाँ की भैंस न्याय सूँ, फैल्यो भ्रिष्टाचार।
आपां धापी लूट कबड्डी, मच रही भर्‌या बाजार में....
धर्म-कर्म गयो भाड़ में, राम रहीमा राड़ में।
ए जीवन में करकल रड़गी, पेटा रा बौपार में।।

मारवाड़ी (राजस्थानी) कविता के भाव तो आपके ध्यान में आ ही गये होंगे। दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्र, बाजार और प्रायः अनेक स्थलों से आप परिचित हैं। तब आज के युग का आश्चर्य सामने आता है- 'अप्पकिलंताणं बहुसुभेण' वाह-वाह! जो संचय नहीं करता, जिसका बैंक बैलेन्स नहीं, केवल तन की चुंगी चुकाता है और सर्वहितकारी प्रवृत्ति सहित आत्म-साधना में लीन रहता है- 'जत्ता भे जवणिज्जं च भे' इन्द्रिय और मन जिसके नियंत्रण में हैं, संयम की यात्रा में जो लीन है। विषय-विष का निवारण करके पावन पवित्र मन से आज की विषम परिस्थिति में जो समत्व-साधना में लीन है, क्षमा में श्रम करता है- क्षमाश्रमण है- इस दुःख भरे संसार में सच्चा आधार है। वन्दना आवश्यक में श्रावक नत होता है प्रणत होता है- गुरु चरणों में अवनत होता है। विनय आया, मद गला, अहंकार छूटा, नीच गोत्र का क्षय और उच्च गोत्र का उपार्जन। वीर प्रभु अन्तिम देशना में कह रहे हैं। अहंकृति दोषों का मूल है- उससे छुटकारा होगा तभी तो दोषों से छुटकारा संभव है। इस तरह तीसरा आवश्यक अहंकार छोड़ने का सूचक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. पर पदारथ रंजना, कीन्हीं व्रत की भंजना।
आत्मभाव उल्लंघना, करनी उसकी निंदना।।
स्खलना की हो निवारना, यम की निर्मल पालना....लक्ष्य को पहचान

दुःख क्यों आता है? दोषों के कारण। दोषों का मूल क्या? निज विवेक का अनादर। आत्मभाव छोड़ विभाव में जाना। आत्मरंजन छोड़ मनोरंजन में जाना। आत्मसुख छोड़ सातावेदनीय जनित सुख में लीन होना। साता का सारा सुख बाहर से ही तो मिलता है, मनोज्ञ शब्दादि में बाहर से शब्द, रूप आदि की प्राप्ति आवश्यक होती है- अतः पराधीन बनाती है। उससे विरत होना व्रत है- उस अतिक्रमण से पीछे लौटना प्रतिक्रमण है। यूं तो सारा प्रयास उसी के लिये किया, औदयिक भाव से क्षायोपशमिक भाव में आने के लिये किया, उदय के प्रभाव से प्रभावित नहीं होने के लिये किया, अशान्ति से शान्ति में आने के लिये किया, पर अबकी बार गहराई से देख, शान्त आत्मा की स्तुति कर, प्रशान्त बनने में पुरुषार्थ करने वालों की शरण लेकर, जीव अपने कृत्य-दुष्कृत्य के लिये आलोचना में ध्यान केन्द्रित कर दोषों की निन्दा कर रहा है। मोहनीय कर्म को तोड़ने का प्रयास कर रहा है। तीन भागों में विभक्त है चौथा आवश्यक। स्खलना का मिथ्या दुष्कृत देना, भावी सुरक्षा के लिये व्रत के स्वरूप सहित अतिचारों को ध्यान में लेकर जागृति बढ़ाना और पंच परमेष्ठी की स्तुति सहित उनकी, व्रतियों की, जीवमात्र की अविनय के लिये क्षमायाचना करना। यह आवश्यक सूत्र का मूल भाग है। किसी वीतराग पथिक के रसिक साधक ने भी कुछ नियम बताए, मानव जीवन के उत्थान के लिए-

१. प्राप्त विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।

२. की हुई भूल को न दोहराने का व्रत लेकर सरलतापूर्वक प्रार्थना करना।

३. न्याय अपने पर करना, क्षमा अन्य को करना।

आश्चर्य है यह साधक लघुवय में आँख चले जाने से, शान्त निर्विकार रूप से ध्यान-मौन की साधना में लीन रहा। बिना किसी ग्रन्थ को पढ़े, वही सत्य उद्घाटित किया- जो अनन्त ज्ञानियों ने फरमाया- और क्या कहूँ मैं आपको, शब्द समझ नहीं पा रहा। हम वीतराग भगवन्तों के सपूत कहलाने के हकदार हैं क्या? श्रेष्ठतम साधना पथ को प्राप्त करके भी हमें क्यों भटकना पड़ रहा है किसी ध्यान केन्द्र में? क्यों जाना पड़ रहा है Art of living में? क्यों पढ़ना पड़ रहा है You can win आदि को। पहला दोष हमारा है, साधु संस्था का है। आत्मोत्थान, मन की-समाधि, हृदय की पवित्रता, तन का स्वास्थ्य सभी कुछ तो समाया है जैन दर्शन में।

एक गाँव गये। अपनी-अपनी विधि से प्रतिक्रमण करने वाले दो पक्ष- हाल के दो छोरों में इतनी जोर-जोर से पाठ बोल रहे थे कि किसी का प्रतिक्रमण हो पाना....? पूरा का पूरा अतिक्रमण...और कर रहे प्रतिक्रमण। विधि को लेकर विवाद है, कायोत्सर्ग को लेकर विवाद है- संवाद करने का भरसक प्रयास हुआ- हमारे पूर्वाचार्य सफल नहीं-हो पाए। अपनी अपनी परम्परा से भले ही करो, किन्तु दूसरों को गलत नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहना। अनुयोगद्वार सूत्र के हार्द को समझकर भावपूर्वक दोष टटोलना, दोष निकालना है, मात्र विनम्र अनुरोध कर रहा हूँ। नाम को समाप्त कर निर्नाम बनना है ना?

५. भूख लगी निज नाम की, भूल नहीं है काम की।
व्रण चिकित्सा चाम की, भावना बस राम की।।
काय का उत्सर्ग है, श्रेष्ठ यह व्युत्सर्ग है... लक्ष्य को पहचान

'सव्वदुक्खविमोक्खणं' सर्व दुःखों से छुटकारा दिलाने वाला व्युत्सर्ग। पर पदार्थ के आकर्षण से लगे घावों को, जड़ द्वारा आत्मा पर किये व्रणों को भरने वाला। निज नाम की भूल से भयंकर स्खलना होती है। खंधक की खाल छिलने का कारण, काचरा छीलना नहीं, अहंकृति ही तो था। त्रिपृष्ठ वासुदेव द्वारा शय्यापालक के कानों में शीशा डलवाने का कारण भी अहंकार रहा।

असंख्यात काल- लगभग १ कोटाकोटि सागर में ४२००० वर्ष कम तक भगवान् महावीर के जीव को नीच गोत्र में जाने का कारण? आप परिचित हैं- बस इसी अहंकृति से छुटकारा करते हुए अब तो नाम ही नहीं काया की ममता के त्याग की बारी है। कायोत्सर्ग के रूप बदलते गए। आगम के पश्चात् श्वास का उल्लेख आया और फिर श्वास-गणनापूर्ति के लिये लोगस्स की संख्या का निर्धारण हुआ। उसी क्रम में अजमेर सम्मेलन में पूर्वाचार्यों ने एकरूपता का प्रयास किया। हम करें- पर उस समय काया की ममता को त्याग कर प्रभु में लवलीन हो जायें, आत्मभाव में लवलीन हो जायें, पुरानी भूल अपने आप छूट जायेगी और भविष्य की उज्ज्वलता के लिये-

६. वीर का व्याख्यान है, करना आतम ध्यान है।
सद्गुणों की खान है, पाप प्रत्याख्यान है।
प्रतिक्रमण (आवश्यक) शुद्ध करना है, मुदित मुक्ति वरना है...लक्ष्य को पहचान

वर्तमान की सामायिक प्रथम आवश्यक हुआ, अतीत का प्रतिक्रमण चौथा आवश्यक हुआ, अब बारी आई भविष्य के प्रत्याख्यान की- गुणधारणा। पढ़ा मैंने "प्रायश्चित्त द्वारा चित्त की शुद्धि हो जाने पर व्रती का जीवन प्रारम्भ होता है।" हम देख लें- 'पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि' के पश्चात् ही महाव्रत आरोपण का पाठ बोला जाता है। दशवैकालिक का चौथा अध्याय कहता है- 'पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि..। अर्थात् भूत के गर्हित जीवन से छुटकारे के पश्चात् ही इच्छित श्रेष्ठ जीवन में प्रवेश संभव है। प्रायः उत्तर गुण के रूप में प्रत्याख्यान धारण किये जाते हैं। आत्मोत्थान की प्रक्रिया का सूचक है प्रतिक्रमण।

गुरुकृपा से रात्रि में ही भजन बना और आज बैंगलोर का भंसाली परिवार गुरु भगवन्तों की सेवा में आगे प्रेरणा लेने के साथ बैंगलोर की विनति करने उपस्थित हुआ। अनेक साधक स्वाध्यायी हैं इस परिवार में- वे भी और शेष सब भी आत्म विकास करने वाली शुद्ध साधना में आगे बढ़ें, इसी भावना से कुछ चिन्तन करने का मौका मिला। आचार्य भगवन्त की कृपा से उनके सान्निध्य में आगे बढ़ें। इसी मंगल भावना के साथ....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org